डॉ. अंबेडकर की राजनीतिक विरासत

शंकर शरण*

एक महान दलित नेता के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर (1891–1956) की प्रसिद्धि ऐसी है कि बहुतेरे लोग उनके व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं से अपिरचित रह जाते हैं। जबकि डॉ. अंबेडकर एक बड़े विद्वान, कानून-वेत्ता और राजनीतिक चिंतक भी थे। यह लेख शिक्षार्थियों के लिए डॉ. अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन के उन पहलुओं को प्रस्तुत करता है, जो हमारे देश के लिए आज भी सामयिक हैं। समकालीन भारत की सांप्रदायिक समस्या, तुलनात्मक धर्म-दर्शन तथा हमारी सामाजिक समस्याओं पर भारतीय और पश्चिमी अवलोकनकर्ताओं के नज़रिये में अंतर आदि वैसे कुछ बिंदु हैं। इन पर डॉ. अंबेडकर का विश्लेषण आज भी उपयोगी और विचारणीय है। इस लेख में उनकी राजनीतिक विरासत के इन्हीं, कम चर्चित पक्षों को संक्षेप में रखा गया है।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के बारे में हमारे देश में चर्चा प्राय: एकांगी रही है। निस्संदेह वे मुख्यत: एक अथक सामाजिक योद्धा थे, जिन्होंने निम्न मानी जाने वाली जातियों का उत्पीड़न समाप्त करने तथा उनके उत्थान के लिए अपना तन-मन-धन अर्पित कर दिया था। इसमें भी संदेह नहीं कि आधुनिक भारत में इसके लिए डॉ. अंबेडकर से अधिक कार्य किसी ने नहीं किया। यद्यपि स्वामी श्रद्धानंद, महात्मा गाँधी, महात्मा फुले जैसे अनेक मनीषियों ने भी दलितों के उत्थान के लिए बुनियादी कार्य किए। डॉ. अंबेडकर का योगदान भी इनसे कमतर नहीं था।

किंतु यह चर्चा कम होती है कि डॉ. अंबेडकर एक पक्के देशभक्त और गंभीर राजनीतिक चिंतक भी थे। उनके संपूर्ण विचार-फलक में केवल अछूतों की अवस्था और उनके लिए संघर्ष के उपाय करने की चिंता भर नहीं थी। उन्होंने बाहरी विश्व की राजनीतिक, ऐतिहासिक गति पर भी निरंतर ध्यान रखा था। उससे न केवल निम्न वर्गों, बल्कि संपूर्ण भारत के लिए सबक निकाले थे। इसलिए डॉ. अंबेडकर का वांङमय पलटकर सुखद आश्चर्य होता है कि राजनीति के मूल सिद्धांतों, व्यवहार, रणनीति, कार्यनीति, विभिन्न सभ्यताओं, देशों,

एसोसिएट प्रोफ़ेसर, (राजनीति शास्त्र), सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

मतवादों, मज़हबों आदि की विशेषताओं और इन सबसे निकलने वाले निष्कर्षों पर अंबेडकर की पकड़ कितनी गहरी थी! कम्युनिज़्म, इस्लाम एवं ईसाइयत पर डॉ. अंबेडकर के मूल्यांकन आज भी खरे हैं। उस ज़माने में इन वृहत सभ्यतागत विषयों पर अनेक बड़े कांग्रेस नेताओं ने भी कम ही ध्यान दिया था। इस प्रकार, न केवल डॉ. अंबेडकर ने तब राजनीति–कूटनीति के सभी पहलुओं पर सदैव नज़र बनाए रखी थी; बल्कि भारत की राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित करने में उनके विचार आज भी यथावत् प्रासंगिक हैं। कोई भी स्वतंत्र अध्येता इसे महसूस किये बिना नहीं रह सकता।

डॉ. अंबेडकर स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं में सर्व–प्रमुख थे। यद्यपि संविधान का प्रारूप बनाने में सात व्यक्तियों की समिति बनी थी, किंतु व्यवहारत: उसका सारा भार डॉ. अंबेडकर ने ही उठाया था। उस दौरान विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों, कानूनों के उनके ज्ञान और कठिन परिश्रम तथा विवेकपूर्ण विश्लेषण को देखकर संविधान सभा में उनके आलोचक भी प्रशंसक बन गए थे।

स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने से पहले लगभग तीस वर्षों से डॉ. अंबेडकर की छवि अछूत कही जाने वाली जातियों के राजनीतिक प्रतिनिधि की रही थी। इसके लिए उन्होंने संपूर्ण समाज से लोहा लिया। किंतु उनका प्रयत्न मात्र राजनीतिक आंदोलन पर ही केंद्रित नहीं था। वह लोगों में अकर्मण्यता, आलस्य, आत्मसम्मान हीनता दूर करने के लिए सामाजिक प्रयत्न को भी उतना ही आवश्यक मानते थे।

डॉ. अंबेडकर एक गंभीर राजनीतिक चिंतक भी थे। उन्होंने स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने में सर्वोपरि भूमिका तो निभाई ही, समकालीन विश्व के राजनीतिक चिंतन और व्यवहार पर गहन विचार करके उन्होंने अत्यंत मूल्यवान निष्कर्ष दिए थे। मानव इतिहास में महापुरुषों की भूमिका की जैसी सारगर्भित प्रस्तुति अंबेडकर ने की है, वह अत्यंत मूल्यवान है। इसी प्रकार, लोकतांत्रिक राजनीति में नागरिक स्वतंत्रता और समानता की अवधारणा, उसे व्यवहारत: सुनिश्चित करने तथा देश व राज्य की रक्षा के लिए उनकी सीमाएँ निर्धारित करने संबंधी अंबेडकर के विचार स्थायी महत्त्व के हैं।

उदाहरण के लिए, जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे के महान योगदान पर विचार करते हुए डॉ. अंबेडकर ने राजनीतिक क्रियाकलाप के लिए दो आवश्यक शिक्षाओं को रेखांकित किया था: (1) किन्हीं काल्पनिक विचारों को अपना आदर्श नहीं बनाना चाहिए। आदर्श ऐसे होने चाहिए जिन्हें व्यवहार में प्राप्त करना विश्वसनीय जान पड़े; (2) राजनीति में बौद्धिकता और कोरे सिद्धांत की तुलना में लोगों की भावना और उनके विशिष्ट स्वभाव का अधिक महत्त्व होता है।

डॉ. अंबेडकर के अनुसार लोकतांत्रिक राजनीति मूलत: लोकतांत्रिक समाज पर निर्भर है। किसी देश की शक्ति और प्रगति उसके सामाजिक जीवन, उच्च स्तरीय नैतिकता, ईमानदार आर्थिक क्रियाकलाप, जनता का मनोबल, साहस और दैनंदिनी की सामान्य आदतों पर आधारित होती है। इसीलिए वह राजनीतिक सुधारों से अधिक सामाजिक सुधार और सामाजिक पुनर्निर्माण पर बल देते थे। इसीलिए उन्होंने तत्कालीन भारत में

सबसे निचली सीढ़ी पर गिने जाने वाले लोगों को सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त करने पर अपना संपूर्ण ध्यान केंद्रित किया था। ऐसा करते हुए न वह कभी दिखावे की कार्यवाहियों में पड़े, न मनमानी माँगें और घोषणाएँ करने में। अपने सभी कार्यों के निर्णय में वह सबसे निम्न व्यक्ति के उत्थान को ही अपना मार्गदर्शक समझते थे।

किंतु ऐसा करते हुए डॉ. अंबेडकर ने संपूर्ण भारत के हित, विश्व में उसके उत्थान को कभी नहीं छोड़ा। विदेशी विचारों, मिशनरी संगठनों और उनकी विभाजनकारी प्रेरणाओं से सदैव दूरी रखी। उन्होंने कहा भी कि– ''मैं भारत से प्रेम करता हूँ'' (इसलिए झूठे नेताओं से घृणा करता हूँ)। देश–विदेश में ऐसी शक्तियाँ थीं जो डॉ. अंबेडकर को फूट–परस्ती की ओर बढ़ाना चाहती थीं। किंतु हिंदू समाज की कुरीतियों, उसके प्रति घोर कटुता के बावजूद डॉ. अंबेडकर वैश्विक संदर्भ में संपूर्ण भारत की अस्मिता, एकता के प्रति निष्ठावान बने रहे। विदेशियों द्वारा भारतीय समाज की धूर्ततापूर्ण एवं स्वार्थपरक आलोचना करने पर डॉ. अंबेडकर इसका बचाव करते थे। उदाहरण के लिए, जब केथरीन मेयो ने अपनी पुस्तक में हिंदू धर्म की कुत्सित आलोचना की, तो अंबेडकर ने उसका मिथ्याचार दिखाने में तनिक भी संकोच नहीं किया।

इस बिंदु का विशद् वर्णन डॉ. अंबेडकर की पुस्तक *'पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इंडिया'* (सन् 1940 में पहली बार प्रकाशित) में मिलता है। इस पुस्तक में तब के भारत में विगत पचास वर्ष की मुस्लिम राजनीति का विस्तृत, प्रमाणिक लेखा–जोखा है। साथ ही, हिंदू–मुस्लिम संबंध ों तथा इस्लामी राजनीति पर अत्यंत गंभीर चिंतन है। चूँकि डॉ. अंबेडकर हिंदू धर्म और समाज के कटु आलोचक थे, इसलिए उनके विचारों पर किसी सामुदायिक पक्षपात का आरोप लगाना भी संभव नहीं। न वह कभी लगाया गया। उलटे, जिन्ना जैसे प्रखर बौद्धिक मुस्लिम नेता ने भी उसे पठनीय बताया था।

जिस भावना से डॉ. अंबेडकर ने वह पुस्तक लिखी थी, वह पुस्तक के मुखपृष्ठ पर इस प्रकार अंकित था, *''और बुद्धि, हे भगवान! और बुद्धि दो, नहीं तो हम इस सुंदर उपवन, जिसे हम पा सकते हैं, को बुरी तरह तहस–नहस कर डालेंगे।''* यह पूरी पुस्तक अगाध देशभक्ति में लिखी गई थी, उसमें किसी सामुदायिक पक्षपात का कोई सवाल ही नहीं उठता था। वस्तुतः राजनीति शास्त्र और इतिहास के अध्येताओं के लिए समकालीन भारत की सांप्रदायिक समस्या की वास्तविक प्रक्रिया तथा इसकी सैद्धांतिक, व्यवहारिक पृष्ठभूमि समझने के लिए यह एक अनिवार्य ऐतिहासिक कृति है।

वैसे भी, डॉ. अंबेडकर बहुत बड़े विद्वान और विश्व की व्यापक जानकारी रखने वाले अवलोकनकर्ता माने जाते थे। प्रसिद्ध ब्रिटिश लेखक बेवरली निकॉल्स ने डॉ. अंबेडकर को उस जमाने में भारत के 'छः सर्वोत्तम जहीन व्यक्तियों' में एक बताया था। यह 1944 की बात है। हर हाल में भारत में हिंदू–मुस्लिम संबंधों और इस्लामी राजनीति की विशेषताओं को समझने के लिए उनकी इस पुस्तक का स्थायी शिक्षात्मक मूल्य है। पुस्तक के द्वितीय

संस्करण (1945) की प्रस्तावना में डॉ. अंबेडकर ने स्वयं लिखा था–*''यह भारतीय इतिहास और भारतीय राजनीति के सांप्रदायिक पहलुओं की एक विश्लेषणात्मक प्रस्तुति है।''*

उस पुस्तक की आवश्यकता को भारी महत्त्व देते हुए डॉ. अंबेडकर ने उसे लिखने के लिए कई ज़रूरी काम स्थगित कर दिए थे। वह मूलतः पुस्तक नहीं, बल्कि मुस्लिम लीग द्वारा 'पाकिस्तान-प्रस्ताव' पास करने के बाद इस विषय पर इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (आई.एल.पी.) का प्रतिवेदन था जिसे डॉ. अंबेडकर ने तैयार किया तथा आई.एल.पी. की एक विशेष समिति के पुनरीक्षण के बाद इसे प्रकाशित किया गया। उसका उद्देश्य, डॉ. अंबेडकर के ही शब्दों में—*''पाकिस्तान के बारे में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अपने निष्कर्ष पर पहुँचने में सहायता करना है।''* (बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर, *'संपूर्ण वाङ्मय',* खंड-15, भारत सरकार, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, जनवरी 2000, पृ. xiii-xiv)। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं कि आज तिहत्तर वर्ष बाद भी भारत में हिंदू-मुस्लिम समस्या और तत्संबंधी राजनीति को समझने में यह पुस्तक बहुत सहायक है। मूल अंग्रेज़ी में यह पुस्तक इंटरनेट पर भी इस साइट पर उपलब्ध है–
http//www.columbia.edu/itc/mealac/pritchettOOambedkar Ambedkar_partition/

इसमें सिलसिलेवार बहुतेरे तथ्यों, घटनाओं एवं वक्तव्यों का ठोस विवरण रखने के बाद, आठवें अध्याय के अंत में भारतवासियों को समझाते हुए डॉ. अंबेडकर कहते हैं कि उन्हें मुस्लिम लीग की राजनीति की विशिष्टताओं को ध्यान में रखना चाहिए। उनके शब्दों में–*''.....अपना दृष्टिकोण निधरित करते समय वे कुछ महत्वपूर्ण बातों का अपने ध्यान में रखें। विशेष रूप से उन्हें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि माच पॉलिटिक* (macht politic) *और ग्रावामिन पॉलिटिक* (Gravamin politic) *में अंतर होता है, कम्युनिटास कम्युनिटेटम और नेशन ऑफ नेशंस में अंतर होता है। निर्बलों की आशंकाएँ दूर करने वाले रक्षोपायों और ताकतवर लोगों की आकांक्षाएँ पूरी करने के कपटपूर्ण उपायों में अंतर होता है। रक्षा के उपाय की व्यवस्था करने और देश को सौंप देने के बीच अंतर होता है।'' (पृ. 196)*

उक्त अंश में माच पॉलिटिक और ग्रावामिन पॉलिटिक का अर्थ डॉ. अंबेडकर ने फुट नोट में संक्षेप में इस प्रकार दिया है। 'माच पॉलिटिक का अर्थ है सत्ता की राजनीति' तथा ग्रावामिन पॉलिटिक का तात्पर्य है कि मुख्य रणनीति यह हो कि नकली शिकायतें गढ़कर सत्ता हथियाई जाए।' ('Gravamin Politic means in which the main strategy is to gain power by manufacturing grievances'.) अर्थात्, भारत में मुस्लिम लीग की राजनीति ग्रावामिन पॉलिटिक है, जो निरंतर शिकायतें करते हुए कपटपूर्वक एक दबाव बनाती है। जो दिखावे के लिए निर्बल की आशंका का रूप बनती है, किंतु वास्तव में वह एक ताकतवर, संगठित समुदाय की राजनीतिक रणनीति है। भारतवासियों को यह ठीक-ठीक समझकर चलना चाहिए। एक सटीक मुहावरे में दी गई डॉ. अंबेडकर की यह शिक्षा आज भी प्रासंगिक और सदैव स्मरणीय है।

दसवें अध्याय में मुस्लिम लीग की एक केंद्रीय विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ. अंबेडकर लिखते हैं–*''मुस्लिम राजनीति अनिवार्यत: मुल्लाओं की राजनीति है और वह केवल एक अंतर को ही मान्यता देती है – हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मौजूद अंतर। जीवन के किसी भी धर्मनिरपेक्ष तत्त्व का मुस्लिम समुदाय की राजनीति में कोई स्थान नहीं है और वे मुस्लिम राजनीतिक जमात के केवल एक ही निर्देशक सिद्धांत के सामने नतमस्तक होते हैं जिसे मज़हब कहा जाता है।'' (पृ. 226)।* इसी अध्याय में आगे डॉ. अंबेडकर पुन: कहते हैं कि यह राजनीति हिंदुओं के साथ बराबरी नहीं, बल्कि उनके ऊपर वर्चस्व हासिल करने के लक्ष्य से प्रेरित है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मुस्लिम नेताओं ने मुस्लिम स्त्रियों के कुछ अधिकारों की भी बलि चढ़ा दी, जो उन्हें इस देश में सन् 1939 तक मिली हुई थी।

डॉ. अंबेडकर लिखते हैं कि सन् 1939 तक भारत में कानून यह था कि मुस्लिम कानून के अंतर्गत विवाहित पुरुष या महिला द्वारा अपना मज़हब त्याग देने से वह विवाह भंग हो जाता था। यानी यदि कोई विवाहित मुस्लिम महिला इस्लाम छोड़ देती थी, तो उसके विवाह का स्वत: विच्छेद हो जाता था और– *''वह अपने नये धर्म के किसी भी पुरुष से विवाह करने के लिए स्वतंत्र हो जाती थी। साठ वर्ष तक भारत की सभी अदालतों में इस कानून का दृढ़तापूर्वक पालन किया गया।'' (पृ. 233)* मगर 1939 के मुस्लिम विवाह अधिनियम द्वारा इस कानून को रद्द कर दिया गया। इस कानूनी परिवर्तन के पीछे संपूर्ण मंशा हिंदुओं की तुलना में मुस्लिम संख्यात्मक अनुपात की ताकत न घटने देने की थी। डॉ. अंबेडकर के अनुसार, इसी उद्देश्य के लिए मुस्लिम महिलाओं के उस अधिकार की बलि चढ़ा दी गई। (पृ. 239)

इन्हीं अनुभवों के आधार पर डॉ. अंबेडकर ने केथरीन मेयो की एकतरफा बातों की आलोचना थी। केथरीन ने लिखा था कि हिंदू धर्म में सामाजिक विषमता है, जबकि इस्लाम में भाईचारा है। अंबेडकर ने इसका खंडन करते हुए कहा कि इस्लाम बुराइयों और जातिवाद से भी मुक्त नहीं है। भारत के मुसलमानों का विशद् सामाजिक विश्लेषण करते हुए उन्होंने यह सविस्तार प्रमाणित किया। उनकी उक्त पुस्तक का दसवाँ अध्याय इसी बिंदु पर केंद्रित है। उसमें भरपूर तथ्यों और आंकड़ों के साथ हिंदू और मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति का विशद्, प्रमाणिक विश्लेषण है।

डॉ. अंबेडकर के अनुसार–*''हिंदुओं में सामाजिक बुराइयाँ हैं। किंतु एक अच्छी बात है कि उनमें उसे समझने वाले और उसे दूर करने में सक्रिय लोग भी हैं। जबकि मुस्लिम यह मानते ही नहीं कि उनमें बुराइयाँ हैं और इसलिए उसे दूर करने के उपाय भी नहीं करते।''* इस्लाम संबंधी किसी विषय पर ऐसी खरी बात महात्मा गांधी भी कभी नहीं कह सके। यद्यपि ईसाइयत के संबंध में उन्होंने वही बातें बार–बार कही थीं, जो इस्लाम के लिए और भी उपयुक्त हैं। अत: कहा जा सकता है कि कुछ विषयों में डॉ. अंबेडकर की मीमांसा महात्मा गांधी से अधिक सत्यनिष्ठ और सैद्धांतिक थी। मात्र उक्त पुस्तक के अध्ययन से ही यह बात पुष्ट हो जाएगी, जिसे उसके तथ्यों और निष्पक्ष, बेबाक विश्लेषण के लिए अपने समय में बहुत ख्याति मिली थी।

उन विचारों का महत्त्व इस बात में भी है कि डॉ. अंबेडकर ने अपने चिंतन, अध्ययन, प्रत्यक्ष अवलोकन और व्यवहारिक अनुभवों के आधार पर उन्हें रखा था। वहाँ कोई शब्दजाल या किसी बँधी-बँधाई विचारधारा का बंधन नहीं था। इसीलिए वे अपने समकालीन उन नेताओं की कठोर आलोचना भी करते थे, जिनके क्रियाकलाप और विचार उन्हें सुसंगत, सत्यनिष्ठ नहीं प्रतीत होते थे। उनके शब्दों में- *''मैं अन्याय, अत्याचार, अहंकार और खोखली बातों से घृणा करता हूँ, और मुझे उन सबसे घृणा है जो इसके अपराधी हैं।''*

इसीलिए स्वतंत्र भारत की सरकार में एक प्रमुख हस्ती, देश के प्रथम कानून मंत्री के रूप में कार्य करते हुए भी उन्होंने अपने ध्येय की सेवा में कोई कमी नहीं आने दी। वह सत्ता-सुख लेने में नहीं लगे बल्कि नयी स्थिति में पूरे देश की जनता को निम्न जातियों के लोगों की स्थिति सुधारने के लिए प्रेरित करने तथा प्रशासन, शिक्षा, छात्रवृत्तियाँ, रोज़गार, कृषि आदि सभी क्षेत्रों में निम्न जातियों को समुचित स्थान दिलाने के लिए हर संभव प्रयत्न करते रहे। कहा जा सकता है कि अल्प काल में उन्होंने मंत्रिमंडल में अपने कार्य के द्वारा भी अधिकतम रचनात्मक योगदान किया।

आज अनुसूचित जातियों, जनजातियों, निम्न वर्गों के विकास और उत्थान के लिए जितने भी सरकारी कार्यक्रम चल रहे हैं, लगभग सबके पीछे डॉ. अंबेडकर के सुझाव अथवा योगदान हैं। उच्च जातियों के लोगों को अपनी संकीर्ण मनोभावनाओं, कुरीतियों आदि को छोड़ने के लिए आह्वान करने में भी डॉ. अंबेडकर लगे रहे थे। उनकी सत्यनिष्ठा, निस्वार्थ प्रवृत्ति के कारण हर जाति, समुदाय के लोग उनका आदर करते थे। यही कारण है कि निम्न वर्गों के आरक्षण आदि विशेष सुविधाएँ बिना किसी आपत्ति के स्वीकार की गईं। तब संविधान सभा, संसद आदि सभी नीति-निर्मात्री संस्थाओं में उच्च जाति के लोगों का ही वर्चस्व था। उनके समर्थन से ही डॉ. अंबेडकर द्वारा निम्न वर्गों के उत्थान हेतु प्रस्तावित सभी कानूनी प्रावधान स्वीकार किए गए। किसी ने उसका विरोध नहीं किया। क्योंकि डॉ. अंबेडकर सच्चे राष्ट्रीय नेता थे, किसी समुदाय विशेष के संकीर्ण हित-चिंतक नहीं। इस सत्य को अधिकांश देशवासी समझते थे। डॉ. अंबेडकर किसी के विचारों, प्रस्थापनाओं को यथावत् स्वीकार करने के स्थान पर अपने विवेक और अनुभव से परख कर मूल्यांकन करते थे। उन्होंने अपने समाज तथा देश के उत्थान के लिए किसी नेता, दार्शनिक या विचारधारा को अपना गुरु मानकर उसकी अंध भक्ति करने के बदले अपना पथ और विचार स्वयं बनाया। यह उन्हें अपने समकालीन अनेक राजनीतिक हस्तियों से नितांत विशिष्ट स्थान पर खड़ा कर देता है।

इस संदर्भ में हमारे लिए अंबेडकर के विचारों का स्थायी महत्त्व है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया था– *''संभव है, मैं भूल कर रहा होऊँ, परंतु मैंने सदैव अनुभव किया है कि दूसरों से दिशा-निर्देश लेने या चुपचाप बैठे रहकर स्थिति को बिगड़ते रहने देने की तुलना में स्वयं कोई उपाय करते हुए भूल करना अच्छा है।''* यह कार्य उन्होंने जिन कठिन स्थितियों में किया था, उसे जाने बिना अंबेडकर के ऐतिहासिक योगदान को समझना कठिन है।

आज हमारा बुद्धिजीवी वर्ग डॉ. अंबेडकर को मात्र दलित-नेता मानकर चर्चा करता है। यह एक भूल है। वस्तुतः वे अपने समय के एक महत्वपूर्ण

राजनीतिक चिंतक होने के साथ-साथ पूरे भारत के एक राष्ट्रवादी नेता थे। यह ध्यान देने की बात है कि डॉ. अंबेडकर के विचारों और क्रियाकलापों में दोहरापन नहीं था। वह जो कहते थे, उसी प्रकार का व्यक्तिगत और राजनीतिक आचरण भी करते थे। इसीलिए उनकी संपूर्ण राजनीति नैतिक, स्पष्ट, सहज और आडंबरहीन रही थी।

डॉ. अंबेडकर कभी दिखावे की कार्यवाहियों में नहीं पड़े, न लोक-लुभावन घोषणाएँ करने में। वह लोगों को फुसलाकर अपने पीछे लाने में, या किसी तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनावटी बातों, तर्कों का सहारा लेने में विश्वास नहीं करते थे। संभवत: इसीलिए वे कपटी नेताओं को भी आसानी से पहचान सकते थे। उन्हें गहरी वेदना होती थी कि देश में सच्चे राजपुरुषों का सर्वथा अभाव है अर्थात ऐसे नेता जो नीति, अनीति, कुनीति, यथार्थ, कल्पना, संभव, असंभव आदि का अंतर समझते हों और लोक-हित में उपयुक्त निर्णय लेने और उस पर चलने में भी सक्षम हों। जो किसी चापलूस और अनुयायी में अंतर कर सकते हों और अन्य नेताओं के साथ बैठकर समानता के भाव के साथ विमर्श कर सकते हों।

अपने अनुभव से डॉ. अंबेडकर ने पाया कि ऐसे नेता भारत में नगण्य थे। यदि स्वतंत्रता-पूर्व भारत में यह स्थिति थी, तो आज के बारे में क्या कहा जाए? यदि मात्र दलित समुदाय का उदाहरण लें तो कहने को अनेक नेता हैं। किंतु उनमें से कितने डॉ. अंबेडकर की सच्ची विरासत से परिचित भी हैं? उस पर चलना तो दूर की बात रही! आज जो बड़बोले बुद्धिजीवी और मानवाधिकार संगठन 'दलित'-'दलित' की रट लगाते हैं, उन्हें कभी डॉ. अंबेडकर के विचारों को उद्धृत करते नहीं सुना जाता। यह अकारण नहीं है! आज उनमें से अनेक लोग जाने-अनजाने विदेशी मिशनरी तंत्र के सुझावों से चल रहे हैं। वे वही बातें और नारे दुहराते हैं जो वह तंत्र उन्हें थमाता है। इसमें स्वयं डॉ. अंबेडकर के विचारों की उपेक्षा की जाती है। इस बात को भूलकर कि विदेशी सलाहकार यहाँ दलितों के हित में नहीं, बल्कि येन-केन-प्रकारेन अपनी मतांतरणकारी राजनीति को प्रमुखता देते हुए सारी योजनाएँ देते हैं।

इस पृष्ठभूमि में यह पुन: ध्यान देने की बात है कि उस काल में भी विदेशी मिशनरी संगठनों ने डॉ. अंबेडकर को भी अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न किया था। जैसे, उन्होंने गांधीजी को भी मतांतरित करने का भरपूर प्रयास किया था। वे समझते थे कि यदि अंबेडकर या गांधी जैसे जोगों को अपने मतवाद में मतांतरित कर लिया जाए तो उनके लाखों अनुयायी स्वत: धर्मांतरित हो जाएँगे। किंतु हिंदू समाज के अपने कटु अनुभवों के बावजूद डॉ. अंबेडकर ने सत्यनिष्ठा तथा संपूर्ण भारतवासियों की वास्तविक हित-चिंता नहीं छोड़ी। वह विदेशी विचारों, संगठनों, विभाजनकारी प्रेरणाओं और प्रलोभनों से सदैव दूर रहे। डॉ. अंबेडकर ने बार-बार दुहराया था कि हमारे सबसे निम्न वर्ग के लोगों के लिए आर्थिक उत्थान से बड़ा प्रश्न उनके सम्मान, विवेक और आत्म-निर्भरता का है।

हिंदू धर्म के प्रति घोर कटुता के बावजूद डॉ. अंबेडकर वैश्विक संदर्भ में भारत की अस्मिता, एकता के प्रति निष्ठावान बने रहे। उन्होंने कभी विदेशियों के सामने गुहार नहीं लगाई। न यहाँ कभी अपना ढोल पीटा, न कभी अपनी पूजा करवाई। वह आजीवन अपने देश और समाज के

उत्थान के लिए ऐसे लगे रहे कि उन्हें अपने बारे में सोचने तक की फुर्सत नहीं थी। उनका जीवन ही नहीं, संपूर्ण लेखन भी इसका प्रमाण है।

क्या आज विदेशियों के आगे-पीछे घूमने वाले बुद्धिजीवी ऐसा करते हैं? सच यह है कि निम्न वर्गों की राजनीति का दावा करने वाले अनेक बुद्धिजीवी व नेतागण डॉ. अंबेडकर की स्वाभिमानी, राष्ट्रवादी विरासत को पूरी तरह उपेक्षित करते हैं। वे अपने विदेशी संरक्षकों के विचारों के अनुसार भारतीय धर्म, संस्कृति और इतिहास पर दिन-रात कालिख पोतने में लगे रहते हैं। इस प्रकार सामान्य जनता को दिग्भ्रमित करने और हानि पहुँचने में प्रयत्नशील हैं। यह तब, जबकि स्वतंत्रता के पैंसठ वर्षों में निम्न वर्गीय समुदायों की स्थिति में भारी सुधार हुआ है। सभी समुदाय के लोग देश के सर्वोच्च पदों को सुशोभित कर चुके हैं। यह सब देश में बनी आम सहमति से ही हुआ, इस बुनियादी तथ्य को समुचित महत्त्व दिया जाना चाहिए। सन् 1952 में डॉ. अंबेडकर ने नोट किया था कि दलित, वंचित समुदायों की स्थिति पिछले चार-पाँच वर्षों में ही पहले से अच्छी हो गई है। तब से छः दशक से भी अधिक बीत चुके। तब भी यदि कुछ बुद्धिजीवी दलितों को 'अमानवीय हिंदू धर्म' से दूर करने तथा विदेशी मिशनरियों की ओर ढकेलने में लगे हैं, तो स्पष्ट है कि वे वैसे ही कपटी नेता हैं जिनसे डॉ. अंबेडकर को तीव्र घृणा थी।

आज भारत में 'दलित' प्रश्न पर विभिन्न प्रकार के विदेशी संगठन कब्ज़ा करने का प्रयास कर रहे हैं। वे संपूर्ण दलित जनसंख्या को हिंदू-विरोध और राष्ट्रविरोध की ओर बढ़ने का यत्न कर रहे हैं। इसमें वे तर्क, तथ्य या सद्भाव नहीं बल्कि धन, कूटनीति व दुष्प्रचार की शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं। आज यदि डॉ. अंबेडकर होते तो इसका कड़ा विरोध करते। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि भारत को बाहरी विचारधाराओं, मज़हबों की आवश्यकता नहीं है। ईसाइयत, इस्लाम आदि को अनुपयुक्त मानकर ही डॉ. अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को चुना था क्योंकि यह विवेक पर आधारित है।

नागपुर में 15 फरवरी 1956 को अपने प्रसिद्ध भाषण में डॉ. अंबेडकर ने विस्तार से बताया था कि उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा क्यों ली। उनके अनुसार, भारतवासियों को बाहरी विचारधाराओं, मज़हबों, मतवादों की कोई आवश्यकता नहीं है। ईसाइयत, इस्लाम आदि का संदर्भ देते हुए उन्होंने बताया कि वह बौद्ध धर्म इसलिए अपना रहे हैं क्योंकि वह ''भेड़ चाल'' पर नहीं, बल्कि विवेक पर आधारित है। अन्य मज़हब जड़-विश्वासों, जैसे 'एक ईश्वर-पुत्र', 'एक दूत-पैगंबर' तथा 'धरती, स्वर्ग, हवा, चाँद' बना कर देने वाले एक मात्र सच्चे ईश्वर का दावा करते हैं। जबकि 'अंधे अनुयायियों' का काम बस यह है कि उसके गीत गाता रहे। उन मज़हबों में भोग, लोभ और संपत्ति-प्रेम महत्वपूर्ण है। मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं। डॉ. अंबेडकर के शब्दों में वे सब सारतः 'खाओ, पियो और मौज़ करो' से अधिक कुछ नहीं कहते। इस दृष्टि से बौद्ध धर्म सर्वश्रेष्ठ है जिसमें विवेक के साथ-साथ संपूर्ण मानवता के कल्याण की भावना है। वह व्यक्ति के गले में ''कुत्ते के पट्टे'' जैसी मज़हबी पहचान नहीं बाँधता, बल्कि उसे विवेकी बनाता है।

क्या यह बातें आज किसी बौद्ध-दीक्षा समारोह में, अथवा संदिग्ध किस्म के बुद्धिजीवियों द्वारा

कभी कही जाती हैं? दलितों के विकास के नाम पर क्या वे उल्टे उन्हें विदेशी मतवादों, संस्थाओं की ओर प्रेरित करने में संलग्न नहीं हैं? यह बातें कोई अवलोकनकर्ता स्वयं देख-परख सकता है। इसके लिए हमारे पास स्वयं डॉ. अंबेडकर द्वारा दी गई बौद्धिक तकनीक एवं शोध-विधि उपलब्ध है। किसी बिंदु पर वास्तविक तथ्यों का प्रमाणिक भंडार इकट्ठा करना और तब किसी निष्कर्ष पर पहुँचना।

आज अपने को डॉ. अंबेडकर के अनुयायी मानने वाले अनेक बुद्धिजीवी तथ्यों के बजाए बने-बनाए निष्कर्ष प्रचारित करने का काम करते हैं। उनकी बातों में तथ्यों, प्रमाणों का पूर्ण अभाव होता है। उसके बदले देश के विभिन्न समुदायों के बीच फूटपरस्ती भरने वाले उग्र विचार भरे होते हैं। इस रूप में, निस्संदेह कहा जा सकता है कि अपने को अंबेडकरवादी कहलाने वाले अनेक लोगों ने ही डॉ. अंबेडकर की विरासत के स्वाभिमानी, स्वदेशी पक्ष को तहखाने में दफ़न कर दिया गया है।

आज यहाँ दलित राजनीति और विमर्श को विदेशी, संदिग्ध संगठनों ने हाई-जैक कर दिया है। वे दलितों को अविवेक, लोभ, भोगवाद और राष्ट्रविरोध के फंदे में डाल रहे हैं। उत्तर-पूर्व भारत के मतांतरित युवक-युवतियों की जीवन-शैली और विचारधारा में आए लाक्षणिक परिवर्तनों से भी इसका अवलोकन किया जा सकता है। अनेक प्रसिद्ध दलित बुद्धिजीवी दलित प्रश्न को निजी स्थार्थ का हथकंडा बनाए हुए हैं। डॉ. अंबेडकर ऐसे नेताओं को घृणा से देखते थे। इसीलिए वह अपने उन समकालीनों की निर्मम आलोचना भी करते थे, जिनके क्रियाकलाप और विचार उन्हें सुसंगत, सत्यनिष्ठ नहीं प्रतीत होते थे। डॉ. अंबेडकर के अनुसार किसी नेता में– *''सत्यनिष्ठा और विश्वसनीयता सबसे आवश्यक गुण है, क्योंकि इसमें सभी नैतिक गुणों का समावेश हो जाता है''।* अच्छा हो, हम दलितों की रट लगाने वाले सभी नेताओं, बुद्धिजीवियों को डॉ. अंबेडकर की दी गई इस अनमोल कसौटी पर कसें।

दूसरी ओर, यह कथित उच्च वर्गीय भारतवासियों के लिए भी लज्जा की बात है कि वे हाल की शताब्दियों में भारत के क्रमशः विखंडन को देख कर भी सीख नहीं ले रहे। उन्हें आत्म-रक्षा के लिए भी अपनी भेद-भाव संबंधी बुराइयों को दूर करने और संपूर्ण समाज की एकता के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए था। अन्यथा हमारी सामाजिक विशृंखला का लाभ उठाते हुए समय के साथ विदेशी शिकारी उन्हें भी निशाना बनाएँगे। कई बिंदुओं पर डॉ. अंबेडकर की विरासत दलितों से अधिक उच्च-वर्गीय भारतवासियों के लिए अधिक मनन करने योग्य है।

अपने कटु अनुभवों, समकालीन व्यवहार तथा भारत के बारे में यूरोपीयनों द्वारा प्रचारित मिथ्या इतिहास के आधार पर डॉ. अंबेडकर ने यहाँ की कुछ बातों के बारे में अपनी कठोर धारणा बनाई थी। यदि इनमें से एक भी तत्त्व अनुपस्थित होता, तो संभवतः वह स्वयं आरंभ से ही सामाजिक एकता का आंदोलन चलाते। डॉ. अंबेडकर के विचारों, देश-भक्ति और स्वाभिमान को देखते हुए यह अनुमान वृथा नहीं। उन्होंने स्वयं देखा था कि स्वतंत्र भारत के चार-पाँच वर्षों में ही निम्न जातियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। इससे संकेत मिलता है कि भारतीय समाज के शताब्दियों के परतंत्रता काल में आई बुराइयाँ

किसी हिंदू धर्म की विशेषता नहीं थी। इसीलिए स्वतंत्र भारत में दलितों की स्थिति सुधारने में तेजी आई, जो सबके सहयोग के बिना संभव न था। अतः यदि डॉ. अंबेडकर आज जीवित होते तो मात्र दलितों के नहीं, पूरे देश के सच्चे नेता होते। उनकी राजनीतिक विरासत के इस पहलू को आज अधिक ध्यान से समझने, परखने की आवश्यकता है।